विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - १०, शुक्रवार, तारीख १९-९-१९८०
वचनामृत - ३९३, ३९४, ३९६ प्रवचन-३८

आज दसलक्षणी धर्म में से छठ्ठा बोल है, छठ्ठा दिन है न? संयम.. संयम। उत्तम संयम का दिन है।

जो जीवरक्खणपरो, गमणागमणादिसव्वकज्जेसु।
तणछेदं पि ण इच्छदि, संजमधम्मो हवे तस्स॥३९९॥

आहाहा! पहले बात जाननी तो पड़ेगी न? भले संयम पाल न सके। और संयम भी समकित बिना होता नहीं। पहले आत्मदर्शन होता है, बाद में संयम होता है। उसे संयम में ऐसा है कि छह काय के जीव की रक्षा में तत्पर, ऐसा पाठ है। उसका अर्थ कि कोई प्राणी को मारने का भाव नहीं है। रक्षा का अर्थ ऐसा नहीं है कि रक्षा कर सकते हैं। परजीव की रक्षा कर सकते हैं, ऐसी बात है नहीं। यहाँ वह शब्द पड़ा है। **रक्षा में तत्पर...** अर्थात् कोई भी प्राणी को थोड़ा भी दुःख हो, ऐसा न करे। और एक तृण का / तिनके का छेद भी न करे। आहाहा! संयम है, किसको कहते हैं? एक तो आत्मज्ञान अन्तर आनन्द पूर्णानन्द स्वरूप, उसमें दृष्टि घुस गयी। बाद में संयम अन्दर स्वरूप में विशेष रमणता करना, वह संयम है। यहाँ संयम में तो वहाँ तक कहा कि एक तिनके का छेद करना, वह भी इच्छता नहीं। तिनके का छेद कर सकता है, ऐसा प्रश्न नहीं है।

यहाँ दो प्रश्न है - एक तो जीव की रक्षा, ऐसा शब्द है। उसका अर्थ जीव की रक्षा कर सकता है, ऐसा नहीं। जीव को नहीं मारने का भाव और अन्तर में रमने का भाव, वह जीव की रक्षा अर्थात् जीव को दुःख न देने का भाव। आहाहा! दूसरी बात—तिनका। एक तिनके का तो दो छेद न करे। उसका अर्थ तिनके का छेद कर सकता है, ऐसा नहीं।

श्रीमद् राजचन्द्र ने भी एक पत्र में ऐसा लिखा है। श्रीमद् राजचन्द्र। हमारे में एक

तृण हमारी गुजराती भाषा है – तृण, तिनके का दो टुकड़ा करने की हमारी शक्ति नहीं है। एक तिनके का दो टुकड़ा करना, यह हमारी शक्ति नहीं। अर्थात् आत्मा परद्रव्य का कुछ कर सकता नहीं। अरे.. ! यह बात। एक तिनका, छिलका.. छिलका, उसका दो टुकड़ा कर सकता नहीं। परन्तु दो टुकड़े होते हैं तो मैं हूँ तो ठीक हुआ, ऐसा भी है नहीं। आहाहा! ऐसी बात। सूक्ष्म बात, प्रभु! उसका नाम संयम है। संयम ऐसे पंच महाव्रत अथवा बाह्य क्रिया, वह संयम है—ऐसा नहीं। अन्तर में एक अपना द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता भी नहीं और दूसरे द्रव्य का दो टुकड़ा करना या रक्षा करना या मारना, वह आत्मा तो कर सकता ही नहीं। आहा.. ! मात्र पर ओर से लक्ष्य छोड़कर अपना आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें रमणता करता है, उसका नाम संयम कहने में आता है। आहाहा!

उसका यहाँ दो अर्थ लिया है। जीव की रक्षा करते हैं। **जीवों की रक्षा में तत्पर होता हुआ गमन-आगमन आदि सब कार्यों में...** गमन-आगमन करते हैं, उन सब कार्य में **तृण का छेदमात्र भी नहीं चाहता है,...** आहाहा! यह स्वामी कार्तिकेय। कुन्दकुन्दाचार्य पहले हो गये। २२०० वर्ष हो गये। पहले यह बनाया है, कार्तिकेयानुप्रेक्षा। आहाहा! वे कहते हैं कि एक तिनके का छेद करना, वह भी आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहाहा! तो इस दुनिया की कैसे रचना की होगी ? आहाहा!

अपनी चीज़ का पहले तो भान हुआ। ज्ञाता-दृष्टा आनन्द हूँ। मैं पर का स्वामी नहीं हूँ। परचीज़ मेरी है, ऐसा मेरा कोई असंख्य प्रदेश में है नहीं। परन्तु मेरे से तिनके का टुकड़ा भी हो, वह नहीं है। और मेरे से कोई प्राणी को थोड़ा भी दुःख हो, (ऐसा नहीं है)। सब सुखी होओ। आहा.. ! मुझे प्रतिकूलता देकर भी यदि तुम सुखी होते हो तो भले तुम सुखी होओ, परन्तु दुःखी कोई न हो। और किसी को दुःखी करने का ज्ञानी का, संयमी का भाव होता नहीं। उसका नाम संयम है। आहाहा! अब अपना चलता अधिकर। ३९३ अन्तिम पंक्ति बाकी है। ३९३।

ऐसी साधक... वहाँ से है न ? ३९३ की अन्तिम की तीन पंक्ति है, ढाई पंक्ति है। **ऐसी साधक परिणति की अटपटी रीति को...** क्या कहते हैं ? आहाहा! दृष्टि का विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य। सम्यग्दर्शन,प्रथम में प्रथम उसका विषय / ध्येय तो

अकेला द्रव्य है। सम्यग्दर्शन का विषय कोई पर्याय, गुणभेद, पर की रक्षा करना, नहीं मारना, वह कुछ है नहीं। समकित का पहला विषय त्रिकाली चीज़ भगवान आत्मा... वह आया? **निष्क्रिय द्रव्य, वह अधिक का अधिक (ज्ञानी को) रहता है।** आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। धर्मी जीव को सम्यग्दृष्टि या मुनि को क्षण-क्षण में अपना निष्क्रिय द्रव्य (अधिक का अधिक रहता है)। निष्क्रिय द्रव्य अर्थात् जिसमें राग की और पर्याय की क्रिया नहीं है, ऐसी त्रिकाली चीज़। आहाहा! पर्याय में निर्णय करता है। पर्याय में आनन्दादि का अनुभव करता है, परन्तु पर्याय सक्रिय है। वह त्रिकाली में है नहीं। आहाहा! ऐसा **निष्क्रिय द्रव्य अधिक का अधिक रहता है।** आहाहा! ऐसी बातें।

ऐसी साधक परिणति की... धर्मीजीव के साधन की दशा, ऐसी अटपटी रीति को, **ऐसी अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं,...** आहाहा! क्या समझ में आया? द्रव्य तो निष्क्रिय ही है। द्रव्य में तो पर्याय का परिणमन जो होता है, वह द्रव्य में नहीं, अन्दर में नहीं है। आहाहा! फिर भी बाह्य की क्रिया दिखती है, चलना-फिरना, गमन (करना), वह सब क्रिया जड़ की है। उसे ज्ञान जानता है कि यह क्रिया होती है। परन्तु वह मेरी नहीं। मैं तो निष्क्रिय द्रव्य चैतन्य हूँ। ऐसी धर्मी की कोई भी क्षण द्रव्यदृष्टि से हटती नहीं। आहाहा!

दूसरों को समझना कठिन होता है। है? ऐसी साधकपरिणति की अटपटी रीति। एक ओर द्रव्य निष्क्रिय और एक ओर पर्याय में दया, दान, व्रत का भाव भी आता है और पर्याय में निर्मलता भी प्रगट हुई है। आहाहा! धर्मी को पर्याय में वस्तु निष्क्रिय है त्रिकाली। परन्तु उसकी दृष्टि करने से पर्याय में निर्मलता प्रगट होती है। वह निर्मलता है और साथ में कमजोरी के कारण राग, दया, दान का भाव भी होता है। परन्तु उसको जानते हैं कि वह मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! **ऐसी साधक परिणति की अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरों को समझना कठिन होता है।** कठिन। अशक्य नहीं। समझ सके नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा!

जिसकी दरकार ही नहीं, जिसको अपना स्वभाव और विभाव का भेदज्ञान ही नहीं है और भेदज्ञान करने का प्रयत्न और प्रयास भी नहीं है, उसको तो यह बात बहुत कठिन लगे। कठिन लगे, परन्तु अशक्य नहीं है। समझ में न आवे, ऐसी बात है नहीं। ध्यान रखे,

समझ करे, रस चढ़े, दुनिया का रस कम करे तो आत्मा का रस चढ़ता है। परन्तु बहुत कठिन बात (है), अटपटी बात है। अब, ३९४।

मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है। उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है। आत्मा के आश्रय से बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है। घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो, सिंह-व्याघ्र दहाड़ते हों, मेघाच्छन्न डरावनी रात हो, चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर निवास करते हैं। आत्मा में से बाहर आयें तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है और फिर अन्तर में चले जाते हैं। स्वरूप के झूले में झूलते हैं। मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है। अद्‌भुत दशा है॥३९४॥

३९४। **मुनिराज के हृदय में...** आहाहा! मुनि किसको कहते हैं? **मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है।** आहाहा! चैतन्य सहजात्मस्वरूप सहजस्वरूप। वह श्रीमद् का वाक्य है। श्रीमद् का अगास है न? उसका यह मन्त्र है। सहजात्मस्वरूप। कोई भी आये, उसे मन्त्र देता है। सहजात्मस्वरूप। सहज आत्म-स्वाभाविक आत्मस्वरूप। **मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है।** आहाहा! बाहर की चीज़ तो बाहर में रहती है। आहाहा! **उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है।** आत्मामय ही है। भाषा देखो! आहाहा! यह दसलक्षणी धर्म है। संयम की यह चीज़ है। **उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है।** आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप (है)। तो मुनिराज का सर्व वर्तन ज्ञानमय ही है। जानना-देखनामय ही उसकी क्रिया है।

आत्मा के आश्रय से बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है। आहाहा! मैं आत्मा शाश्वत् सत्ता, उसको कोई स्पर्श कर सके नहीं तो उसको कोई मार सके, ऐसी चीज़ है नहीं। धर्मी की यह दृष्टि है। आहाहा! मेरा आत्मा, उसके आश्रय से.. आश्रय लिया त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप का। सूक्ष्म बात है, भाई! अभी तो बाहर में स्थूलता चलती है, इसलिए यह बात समझने में कठिन पड़े, परन्तु अशक्य नहीं है। सन्तों ने पंचम काल के जीवों के लिये यह कहा है। पंचम काल के साधु, पंचम काल के श्रोता के लिये कहा है। आहाहा! ऐसा नहीं समझना कि यह तो चौथे काल की बात है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य,

पद्मप्रभमलधारिदेव सब पंचम काल के साधु थे और पंचम काल के श्रोता को समझाते हैं। ऐसा नहीं है कि पंचम काल के प्राणी को यह बात समझ में न आवे। आहा..! उसके लिये तो शास्त्र बनाया। आहाहा! पंचम काल के...

समयसार ३८वीं गाथा में है, अप्रतिबुद्ध था। अनादि से अप्रतिबुद्ध था, उसको गुरु ने समझाया। पंचम काल का प्राणी। आहाहा! समझ में आया? पंचम काल का अबुध प्राणी, आहाहा! अप्रतिबुद्ध-भान बिना के प्राणी को... ३८ गाथा में है, समयसार। उसको गुरु ने समझाया। शास्त्र में ३८ (गाथा में) तो ऐसा लेख है कि समझाया तो वह समझ गया। ओहो..! मैं तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ। समझ तो गया, परन्तु उसको ऐसा निर्णय हो गया, पंचम काल के प्राणी को, उसकी बात करते हैं। पंचम काल के प्राणी को (समझाया)। साधु थे, वे पंचम कला के थे और श्रोता भी पंचम काल का है। पंचम काल का श्रोता अप्रतिबुद्ध था, बिल्कुल अज्ञानी (था)। परन्तु गुरु ने समझाया (तो) ऐसा समझ गया.. आहाहा! संस्कृत टीका में पाठ ऐसा है कि ऐसा समझ गया कि अब मैं मेरी चीज़ से कभी छुटूँगा नहीं। मेरा समकित अब गिरेगा नहीं। सेठ! पाँचवे काल का (शिष्य कहता है)।

मुमुक्षु :- कोई-कोई समझे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- भले कोई समझे। परन्तु यहाँ तो यह कहना है कि वह ऐसा समझा, सम्यग्दर्शन ऐसा प्राप्त किया, ज्ञान-चारित्र भी प्राप्त किया और कहे कि मैं उससे-सम्यग्दर्शन से कभी गिरूँगा नहीं। नि:शंक हूँ। पंचम काल में अप्रतिबुद्ध था, मुझे गुरु ने समझाया और मैं अपना स्वरूप समझा तो मैं कहता हूँ कि मैं सम्यग्दर्शन से.. भगवान का विरह है, केवली का विरह है, परन्तु मैं कहता हूँ मेरे आत्मा की साक्षी से। ऐसा कहता है। ३८ वीं गाथा में है। मैं नहीं गिरूँगा। आहाहा! मैं सम्यग्दर्शन से, भले पंचम काल में आया, परन्तु मैं नहीं गिरूँगा। नि:शंक ऐसा कहता है। भगवान का विरह है, भगवान है नहीं। आत्मा है न! आहाहा! अरे..! ऐसी बातें हैं।

यहाँ वह कहते हैं, **बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है।** आहाहा! कोई भय ही नहीं है। पक्के किले में जैसे किसी का भय नहीं हो। पक्का किला हो, किला। अरे..! वज्र का

किला हो तो किसी का भय नहीं (होता)। उसी प्रकार भगवान आत्मा शाश्वत् सनातन चैतन्य प्रभु, उसकी जहाँ दृष्टि और भान हुआ तो निर्भयता प्रगट हुई है। **बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है।** आहाहा! मुनि की गजब बात करते हैं।

घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो, सिंह-व्याघ्र दहाड़ते हों,... सिंह और बाघ दहाड़ते हों अर्थात् पुकार करते हों। पुकार करते हैं। सिंह और बाघ की आवाज जंगल में से आती हो, फिर भी मुनि अन्दर ध्यान में आनन्द में रहते हैं। आहाहा! यह आत्मा की चीज़ है। आहाहा! कहते हैं, सिंह और बाघ दहाड़ते हों, अर्थात् आवाज-पुकार करते हो। आहाहा! परन्तु मुनि को भय नहीं है। अन्तर में आनन्द में रहते हैं। आहाहा! है? **मेघाच्छन्न डरावनी रात हो,...** ऐसे काले बादल आ गये और डरावनी रात हो। **चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर...** आहाहा!

वैसे तो चैतन्य के सिवा बाहर कहाँ जा सकते हैं। कल्पना कर सकता है कि मैं ऐसा करूँ, मैं ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसी कल्पना करते हैं। बाकी बाहर को तो छूता भी नहीं। परद्रव्य को तो आत्मा कभी तीन काल में छूता नहीं। ऐसा समयसार की तीसरी गाथा में आया है। एक द्रव्य-तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी छूता नहीं। आहाहा! कैसे बैठे? पूरा दिन शरीर से काम लेता है, दिखता है, वाणी से काम लेता है, दिखता है। आहा..! नौकर चाकर से काम लेते हैं, उसे देखते हैं और उसको कहना कि वह कुछ करता नहीं। क्या करता है? वह तो अन्दर अभिमान करता है, उतना करता है, बस! वह क्रिया नहीं कर सकता है। आहाहा! यह बात अन्दर में बैठना.. वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर... उसकी ऐसी पर्याय हो गयी है। द्रव्य तो त्रिकाली ध्रुव है। परन्तु पर्याय ऐसी हो गयी। पर्याय समझे? अवस्था।

गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त... यह पर्याय। चैतन्य में मस्त रहते हैं, वह पर्याय है। आहा..! पर्याय अर्थात् अवस्था। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव चैतन्य भगवान, उसमें पर्याय में मस्त रहते हैं। अन्दर में पर्याय ध्रुव सन्मुख एकाकार कर लेते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! कठिन लगे, क्या करे? भगवान का विरह पड़ा। आहा..! दूसरा मार्ग हो जाता है? जयपुर में मनोहरलालजी आये थे। मनोहरलालजी। सेठ! वणीजी के शिष्य मनोहरलालजी। मनोहरलालजी चल बसे। किसी ने मार डाला। वहाँ जयपुर

आये थे। और प्रश्न किया था। दो प्रश्न किये। एक तो - महाराज! राग और द्वेष, पुण्य और पाप को भगवान ने पुद्गल कहा, ऐसा क्यों? मनोहरलालजी ने प्रश्न किया।

मुमुक्षु :- हम साथ में थे। उन्होंने कहा कि आप बाहर जाईये, मुझे महाराज से पूछना है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! वह बात ऐसी पूछी कि, महाराज! भगवान ने ऐसा क्यों कहा? दया का भाव, सत्य का भाव, भक्ति का भाव, वह पुद्गल? कहा, भाई! वह चीज़ निकल जाती है। अपनी चीज़ हो तो निकले नहीं। अपने में है, वह निकले नहीं और निकले, वह अपनी नहीं। सिद्ध में राग-द्वेष रहते नहीं। यदि अपनी चीज़ हो तो सिद्ध में भी होनी चाहिए। आहाहा! एक प्रश्न यह था।

दूसरा प्रश्न यह था। आप उद्देशिक का स्पष्टीकरण कीजिए तो बहुत (लाभ होगा)। क्या स्पष्टीकरण? (उनको ऐसा कहना था कि), गृहस्थ बनाते हैं। करने को कहते नहीं कि मेरे लिये बनाओ। तो उसके लिये बनाया और लेते हैं तो उसमें क्या है? उसमें उद्देशिक दोष क्या आया? ऐसा प्रश्न किया। भाई! मैं तो ऐसा कहता हूँ, अरे..! भगवान विरह पड़ा। त्रिलोकनाथ के विरह में ऐसा अर्थ करना कि उसके लिये बनाया हुआ आहार उद्देशिक लेते हैं, उसे उद्देशिक नहीं कहते। प्रभु का विरह पड़ा है। हम ऐसा नहीं कहेंगे। आहाहा! उसके लिये बनाते हैं, वह लेते हैं, वह उद्देशिक नहीं, क्योंकि वह करते नहीं हैं, करवाते नहीं हैं। वे तो मात्र बनाया हुआ लेते हैं। तो वह उद्देशिक नहीं, ऐसा कुछ कहो तो बहुत सम्प हो जाए, अरे..! भाई! भगवान का विरह पड़ा, प्रभु के पीछे ऐसा अर्थ करना,..? आहाहा! मैंने तो थोड़ा शान्ति से ऐसा भी कहा,.. उनके मकान में थे न? गोदिका के मकान में, ऊपर की मंजिल पर।

मैं तो भैया! ऐसा मानता हूँ कि वर्तमान में जो दिखते हैं, वह द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी नहीं है। शान्ति से कहा। कोई अपमान, अनादर करने का अपना भाव नहीं था। मात्र सत्य क्या है? भगवान त्रिलोकनाथ का विरह पड़ा, उनके पीछे उसका अर्थ विपरीत करना, प्रभु! ऐसा अभी नहीं हो सकता। क्योंकि आहार उसके लिये बनाते हैं और वह लेते हैं तो वह अनुमोदन है। मन-वचन-काया, करना-करवाना-अनुमोदन इन नव कोटि में

अनुमोदन है। अनुमोदन है तो नव कोटि टूट जाती है। आहा..! समझ में आया? थोड़ा उनको ऐसा लगा। मैंने तो कहा, मुझे तो कोई द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी दिखते नहीं। क्योंकि उसके लिये बनाते हैं और लेते हैं। दूसरा तो कोई उपाय नहीं है। काल ऐसा है। ऐसे कोई तैयार है नहीं, धर्मी तैयार है नहीं, और ऐसा घर में तैयार माल है नहीं। साधु को ध्यान में रखकर उसके लिये पानी बनाये, आमरस बनाये, मोसम्बी का पानी बनाये और बाद में देवे हैं। वह सब प्रभु का मार्ग नहीं है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! गिरिगुफा में मुनिराज चले जाते हैं। जिन्हें दुनिया की कोई दरकार नहीं है। **मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर निवास करते हैं।** चैतन्य में मस्त होकर निवास करते हैं। आहा..! बाहर में दिखता है, मानो यह करते हैं, चलते हैं, फिरते हैं, वह सब क्रिया के कर्ता वे हैं नहीं। आहाहा! अन्तर चैतन्य में रागादि दया, दान महाव्रत का आता है। उसके भी वे कर्ता नहीं। आहाहा! वे तो चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा में मस्त हैं। है? **अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर...** अकेले भाषा है। **मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर निवास करते हैं।** आहाहा!

आत्मा में से बाहर आयें तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है... अन्तर में से बाहर आयें तो शास्त्र स्वाध्याय करते हैं। **और फिर अन्तर में चले जाते हैं।** आहाहा! यह संयम। आज संयम का दिन है। सुगन्ध दशमी। दशमी है न? सुगन्ध दशमी। सुगन्ध कौन-सी? यह सुगन्ध। आत्मा की सुगन्ध। आहाहा! आत्मा में से अतीन्द्रिय आनन्द आता है, वह आत्मा में सुगन्ध है। आहाहा! प्रत्येक बात ही अलग है। आहा..!

यहाँ कहते हैं, धर्मात्मा मुनिराज तो अपने चैतन्य में ही मस्त रहते हैं। कभी अन्दर नहीं रह सके तो शास्त्र वाँचन में आ जाएँ। फिर अन्तर में चले जाते हैं। छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में रहते हैं। मुनि को छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान एक क्षण में दो बार आता है। छठ्ठे आते हैं, क्षण में सप्तम में विकल्प छूटकर निर्विकल्प आनन्द में आ जाते हैं। खाते हैं, पीते हैं, बोलते है, चलते हैं, परन्तु छठ्ठे-सातवें में आ जाते हैं। आहाहा! अरेरे..! इसकी भी खबर नहीं होती।

स्वरूप के झूले में झूलते हैं। आहा..! झूला जैसे झूलता है, वैसे मुनिराज तो

स्वरूप के झूले में झूलते हैं। उसको संयम कहते हैं। आहाहा! अन्तर स्वरूप आत्मा का चैतन्य, राग के विकल्प से भिन्न चीज़, उसके अनुभव में वे झूलते हैं। आहाहा! **मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है।** है तो यह एक ही काम है। उपदेश करना, दुनिया में पुस्तक बनाना, यह करना, वह करना, वह कुछ उनका काम नहीं है। वह तो बन जाओ तो बन जाओ, उसके कारण से। यह टीका अमृतचन्द्राचार्य ने बनायी। टीका करते हुए अन्त में ऐसा कहा, मैंने टीका नहीं बनायी है, वह तो शब्द से बन गयी है। मैं तो मेरे ज्ञानस्वरूप में गुप्त हूँ। मैं विकल्प में आया नहीं। टीका मेरे से बनी है, ऐसे मानना नहीं। आहाहा! गजब बात! समयसार की टीका है न! अभी भरतक्षेत्र में ऐसी टीका है ही नहीं। ऐसी टीका। एक-एक शब्द में गम्भीरता का पार नहीं। ओहो..! गूढ़ भाषा। ऐसी टीका बनाकर कहते हैं कि मैंने बनायी नहीं है, हों! भाई! वह जड़ की पर्याय से बन गयी है। मैं तो मेरे ज्ञानस्वरूप में गुप्त हूँ। आहाहा! यह मुनिराज। है?

मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है। अद्भुत दशा है। वह कोई अलौकिक दशा है, बापू! आहाहा! ३९४ हुआ न? फिर? ३९६? लिख लिया है?

तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है, उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती? आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, अपने में ही सब भरा है। आत्मा सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा एवं अनन्त शक्ति का धारक है। उसमें क्या कम है? सर्व ऋद्धि उसी में है। तो फिर बाह्य ऋद्धि का क्या काम है? जिसे बाह्य पदार्थों में कौतूहल है उसे अन्तर की रुचि नहीं है। अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता॥३९६॥

३९६। **तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है,...** आहाहा! प्रथम पंक्ति। आहाहा! **तीन लोक को जाननेवाला...** क्या कहते हैं? तीन लोक में अपनी कोई चीज़ है, ऐसा माननेवाला आत्मा नहीं है। अपने सिवा / अलावा सब चीज़, विकल्प से लेकर कोई चीज़ मेरी है, ऐसा मुनि, समकिती मानते नहीं। आहाहा! ऐसा **तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है...** जाननेवाला तत्त्व है। तीन लोक में कोई चीज़ को करे, बनावे, रचे, व्यवस्था

करे व्यवस्थापक होकर, (ऐसा तत्त्व नहीं है)। सेठ ने कहा था न? व्यवस्थापक। प्रश्न किया था। किसी की व्यवस्था करनेवाला व्यवस्थापक। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तेरा तत्त्व तो तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है। आहा..! एक दया, भक्ति के राग से लेकर पूरी दुनिया को जानने का आत्मा का स्वभाव है। राग का करना, वह भी आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! अरे..! कब बैठे? **उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती?** आहाहा! तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है, उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती है? आहाहा! **आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है,...** आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है। ज्ञान वह, आनन्द वह, वीर्य वह, शान्ति वह, पुरुषार्थ वह, वही सब है। अन्दर में सब भरा है। आहाहा! **आत्मा स्वयं ही सर्वस्व...** कोई भी अल्पता उसमें है नहीं। पूर्णानन्द का नाथ, एक-एक गुण पूर्ण ऐसे अनन्त गुण का पूर्ण नाथ आत्मा है अन्दर। अरेरे..! उसके सामने कभी देखा नहीं और उसका अनादर करके, जगत का आदर करके (भटका)। जिसका आदर किया, उसको संयोग मिले बिना रहे नहीं। तो परिभ्रमण में भटकेगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, अपने में ही सब भरा है।** है? अपने में ही। अपनी चीज़ में ही सब भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, अतीन्द्रिय शान्ति भरी है, अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन है, अनन्त वीर्य है... ओहो..! अनन्त दर्शन उपयोग है, अनन्त प्रभुता है, अनन्त परमेश्वरता है। ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का तो भण्डार तेरा है। आहाहा! मौजूदगी रखनेवाली चीज़ है, उसकी नजर न करे और मौजूद नहीं है, अनित्य है, (उस पर नजर करता है)। क्योंकि अपना स्वभाव ध्रुव है, नित्य है—ऐसा परिणाम जानता है। ध्रुव को ध्रुवपने नहीं जाना तो दूसरी चीज़ को ध्रुव करने की इच्छा है। दूसरी चीज़ हमेशा रहे, ऐसी भावना है। मेरी चीज़ कायम रहे, ऐसी भावना छोड़कर, यह चीज़ कायम रहे, (ऐसी भावना भाता है)। आहाहा! समझ में आया?

ध्रुव तो यह आत्मा भगवान है। ऐसा पर्याय जानती है। वह पर्याय ध्रुव को नहीं जानती है, तब पर को कायम रखने का भाव (करती है)। जैसे कायम स्वयं रहता है, अपनी खबर नहीं तो दूसरी चीज़ कायम रहे - स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, मकान.. आहाहा! जो नाशवान, क्षण में नाशवान (है)। आहाहा! अपनी ध्रुवता, अपनी

नित्यता कायम रहने की भावना नहीं है। है कायम रहनेवाली चीज़, उसकी दृष्टि नहीं है तो पर को कायम रखने का भाव है। आहाहा! ऐसी बात है। पुस्तक में माल-माल आ गया है। आहाहा!

कल तो एक वैष्णव का.. कौन वह? मकोडी डॉक्टर। डॉक्टर? राजकोट। व्याख्यान में हमेशा आते थे। वैष्णव अन्यमति। उसने लिखा है, मासिक। बहिन के जन्मदिन का लेख। वह गया और पढ़कर... कल पत्र आया है। आहाहा! इसमें क्या-क्या नहीं है? इसमें सब भरा है। आहाहा! इस पुस्तक को तो.. क्या कहा? म्यूजियम में (रखना चाहिए)। संग्रहालय। ऐसा बोला। चन्दुभाई पढ़कर सुनाते थे। यह राजकोट से आया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपने में ही सब भरा है। आत्मा सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा...** आहाहा! भगवान आत्मा सारे विश्व का। सारे अर्थात् पूरा विश्व। विश्व अर्थात् समस्त पदार्थ। देव, गुरु, शास्त्र या स्त्री, कुटुम्ब, परिवार और यह शरीर, वाणी और मन। **सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा...** है। जाननेवाला और दृष्टा-देखनेवाला है। **एवं अनन्त शक्ति का धारक है।** ऐसी तो अनन्त शक्ति। ज्ञाता-दृष्टा तो है, उसके सिवा अनन्त शक्ति का धारक है। आहाहा! जीवत्व शक्ति, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व—ऐसी अनन्त शक्ति को धारण करनेवाला है। आत्मा को समझने का प्रयत्न नहीं और दूसरी चीज़ में पूरी जिन्दगी निकाल दे। आहाहा! उससे परिभ्रमण में जाए। जाए कहाँ का कहाँ भव करे.. आहाहा! अनन्त काल में मनुष्यपना मिलना मुश्किल पड़े। आहाहा!

उसमें क्या कम है? है? उसमें क्या कमी है? भजन में नहीं आया था? बोले थे।

'प्रभु मेरे तू सब बाते पूरा, प्रभु मेरे तू सब बाते पूरा।

पर की आश कहाँ प्रीतम', हे प्रिय आत्मा! अपने को छोड़कर 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम, किण खाते तू अधूरा?' तू किस बात से अधूरा है? प्रभु! आहाहा! भक्ति आती है, भजन आता है। हिम्मतभाई एक बार बोले थे। आहाहा!

उसमें क्या कम है? तेरे में क्या कमी है? प्रभु! अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता-परमेश्वरता (भरी है)। तुम परमेश्वर हो, भगवान हो। आहाहा! ऐसी शक्ति और स्वभाव तेरा अन्दर में पड़ा है। **सर्व ऋद्धि उसी में**

है। आनन्द की, ज्ञान की, शान्ति की ऋद्धि आत्मा की सब ऋद्धि तेरे में है। **तो फिर बाह्य ऋद्धि का क्या काम है ?** आहाहा! तो फिर बाह्य ऋद्धि का क्या काम है ? तेरे में अन्दर अनन्त शान्ति आदि समृद्धि की ऋद्धि भरी है। अनन्त! तो फिर तुझे बाह्य का क्या काम है ? प्रभु! आहाहा! कठिन बात। क्रियाकाण्ड करे तो उसे सूझ पड़े। व्रत करे, तपस्या करे, आहाहा! वह तो राग की मन्दता है, कोई धर्म तो है नहीं। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं, **जिसे बाह्य पदार्थों में कौतूहल है...** जिसको बाह्य पदार्थ में.. आहाहा! अपने सिवा कोई भी चीज़ में विस्मयता है, कौतूहल है, ठीक है, आश्चर्य है— ऐसा है, उसको आत्मा का अनादर है। **उसे अन्तर की रुचि नहीं है।** है ? आहाहा! **जिसे बाह्य पदार्थों में कौतूहल है...** कौतूहल अर्थात् विस्मयता, अधिकता, आश्चर्यता, विशेषता, अपने सिवा बाह्य पदार्थ में कुछ भी विशेष, विस्मय, आश्चर्य लगे,... आहाहा! उसे अन्तर की रुचि नहीं। आहाहा! उसे अन्तर में आत्मा अनन्त ऋद्धि का धनी है उसकी रुचि नहीं है।

अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता,... आहाहा! अन्तर स्वभाव चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी रुचि बिना... क्योंकि रुचि अनुयायी वीर्य। जहाँ रुचि है, वहाँ वीर्य काम करता है। जिस ओर की रुचि है, वहाँ पुरुषार्थ काम करता है। जो आत्मा की रुचि हो तो पुरुषार्थ वहाँ काम करे। बाह्य में रुचि है तो पुरुषार्थ बाह्य में काम करता है। भाव में। काम कर नहीं सकता। आहाहा! अकेले हीरे भरे हैं!! आहा..! हीरे का.. धन्धा.. मकोड़ी कहा न ? डॉक्टर, वैष्णव। राजकोट में नवरंगभाई के यहाँ आये। उसका पत्र आया, इस बार मासिक पत्र पढ़कर। अपना मासिक है न ? आत्मधर्म। बहिन के जन्म दिवस का पढ़कर प्रसन्न हो गया। आहाहा! इसमें क्या है! बहिन के वचनामृत में क्या बाकी है ? ओहो..! वैष्णव। मध्यस्थ आदमी हो, कुछ सत्य की जिज्ञासा करने की रुचि हो, कुछ रुचि हो तो उसको महिमा आये बिना रहे नहीं। आहाहा! यह चीज़!

अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता,... आहाहा! बाहर की रुचि में बाहर ही रुक जाता है। अन्तर की रुचि बिना अन्तर में जा सकता नहीं। आहाहा! ज्ञान का सूक्ष्म उपयोग करके अन्दर में पकड़ना, वह रुचि बिना हो सकता नहीं। आहाहा! रुचि कहीं रुक गयी है। जो अन्तर में पकड़ने की शक्ति नहीं है, तो रुचि कहीं न कहीं अटक

गयी है। आहाहा! उसको छोड़कर अन्दर में जाता नहीं। आहाहा! **उसे अन्तर की रुचि नहीं है। अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता।** अन्तर में गये बिना आनन्द नहीं आता। आहाहा!

मुमुक्षु :- हमारा क्या दोष? काललब्धि नहीं पकी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, नहीं, नहीं। काललब्धि का तो प्रश्न पहले हमारे पास आता था। मैं तो उसको ऐसा जवाब देता था कि काललब्धि तुमने भाषा सुन ली है न? काललब्धि का यथार्थ ज्ञान किया है? यदि काललब्धि का ज्ञान कर ले तो दृष्टि अन्दर में गयी, उसको काललब्धि का ज्ञान होता है। यह (चर्चा) तो हमारे साथ (संवत) १९९० की साल से राजकोट में सम्प्रदाय में चलती थी। काललब्धि होगी तब चले। अरे..! सम्प्रदाय में पहले चलती थी न। (संवत्) १९७२ की साल, ७२ की साल। कितने साल हुए? ६४। साठ और चार। हमारे गुरुभाई बारम्बार ऐसा कहते थे कि भगवान केवली ने देखा होगा, तब पुरुषार्थ होगा। अपने क्या करें? ऐसा कहते थे। यह तो ७२ की साल। सेठ! आहाहा! हम तो सुनते थे। दो साल की दीक्षा (थी)। १९७० में दीक्षा (ली)। १९७२ तक दो साल सुना। भगवान ने देखा होगा, वैसा होगा, अपने क्या करे? अरे..! मैंने कहा, सुनो! दो साल सुना। अब मुझसे रहा नहीं जाता।

भगवान केवलज्ञानी जगत में हैं, एक ज्ञानगुण की एक पर्याय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं, ऐसी पर्याय की सत्ता जगत में है—ऐसा स्वीकार किये बिना केवली ने देखा वैसा होगा, ऐसा कहाँ से आया? सेठ! केवली ने देखा, तो केवलज्ञानी है—ऐसी प्रतीति है? प्रतीति के बिना तू ऐसे ही बात करता है। आहाहा! किसे पड़ी है? बहुत चली थी। हमारे गुरु तो बेचारे भद्रिक थे। बहुत गम्भीर थे। उन्हें यह बात मालूम नहीं थी। आहाहा!

भगवान ने देखा वैसा होगा। बात तो ऐसी ही है। स्वामी कार्तिकेय में लिखा है। स्वामी कार्तिकेय। ऐसा भगवान ने देखा, जिस समय, जिस काल में जहाँ होगा, वह होगा। उसमें शंका करे, वह मिथ्यादृष्टि है। परन्तु उसकी दृष्टि है कहाँ? आहाहा! भगवान ने देखा तो भगवान की दृष्टि, भगवान का जो ज्ञान है, उस ज्ञान की जिसको प्रतीति हुई,.. आहाहा! ऐसे ही बात करे.. काललब्धि आता है उसमें-कलशटीका में। दूसरी जगह काललब्धि आदि आता है। काललब्धि आदि। यहाँ अकेली काललब्धि ली है। परन्तु काललब्धि..

बापू! संसार के कोई काम में तू कभी ऐसा विचार करता है कि काललब्धि पकी नहीं, इसलिए काम नहीं हुआ। वहाँ तू ऐसा विचार करता है ? और आत्मा के धर्म का विचार करता है, तब काललब्धि पकेगी, तब धर्म होगा। तो तुझे आत्मा की रुचि नहीं है। आहाहा! संसार का काम करने में कभी विचार करता है ? कि काललब्धि होगी, तब मिलेगा, पैसा मिलेगा, स्त्री मिलेगी, इज्जत मिलेगी, ऐसा विचार करता है ? वहाँ तो कहता है, मैं पुरुषार्थ करूँगा तो मिलेगा। आहाहा! तेरा पागलपन तो देख। यह पागलपना! पर की चीज़ में तुझे काल की दरकार नहीं और तेरी चीज़ में काल की दरकार! और तेरा पुरुषार्थ जब अन्दर में जाएगा, तेरी काललब्धि पक जाएगी।

टोडरमलजी तो वहाँ तक कहते हैं, मोक्षमार्गप्रकाशक में। आहाहा! काललब्धि और भवितव्यता कोई वस्तु नहीं है, ऐसा लिखा है। जिस समय तू काम करेगा, वह काललब्धि और उस समय भाव आया, वह भवितव्यता। मोक्षमार्गप्रकाशक। टोडरमल। ओहोहो! हजारों बोल का स्पष्टीकरण किया है। ऐसा स्पष्टीकरण करते-करते ब्राह्मण में विरोध हो गया। ब्राह्मण में विरोध हो गया तो ब्राह्मण ने ऐसा किया कि उसकी.. क्या कहते हैं ? जेब में शंकर की मूर्ति रख दी। गुप्तता से। और रात को राजा को कहा, प्रभु! यह शंकर की मूर्ति का अनादर करते हैं। कौन जाने कैसा काल! आहाहा! राजा ने हुकुम किया, हाथी के पैरों तले कुचल दो। अरर..र..! मोक्षमार्गप्रकाशक बनानेवाले। राजा ने हुकुम कर दिया, हमारे परमेश्वर का अनादर करते हो, मूर्ति जेब में रखते हो ? गुंजा.. गुंजा समझे ? जेब। आहाहा!

हाथी को कहा, इसे मार दे। हाथी मारता नहीं था। हाथी डरता था बेचारा। अरेरे..! इस मनुष्य को कुचल दूँ ? टोडरमलजी बोले, अरे..! हाथी! राजा को दरकार नहीं है तो तुझे क्यों दरकार होती है ? पैर रख दे। पैर मेरे पर रख। पैर रखा, कुचल दिया। देह छूट गया। आहाहा! ऐसा काल। उस समय कोई जैन होगा, नहीं होगा, क्या (होगा) ? जैन बिना की नगरी तो होगी नहीं। परन्तु राजा का हुकुम हुआ वहाँ...

इसलिए वे कहते हैं, वहाँ काललब्धि नहीं देखता। आत्मा में पुरुषार्थ करना है, वहाँ काललब्धि देखे तो उसको आत्मा की दरकार, रुचि है नहीं। आहा..! वह कहाँ, देखो! **अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता।** ३९६ हुआ न ? विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)